अण्डे सेने का वो विचित्र तरीका

पारुल सोनी

उभयचर जीव अण्डज होते हैं। इन जीवों में अण्डों का भ्रूणीय विकास मादा के शरीर के भीतर बहुत ही कम या न के बराबर ही होता है। ये जीव अण्डे सेने के विविध तरीके अपनाते हैं। मेंढकों की बात करें तो उनकी कुछ प्रजातियों जैसे राइनोडर्मा डार्विनी में ज़ायगोट का विकास नर की वोकल सैक में होता है तो वहीं मेंढक की जिन प्रजातियों में यह भूमिका मादा निभाती हैं उनमें अधिकांशतया ज़ायगोट अपना पोषण मादा के प्लैसेंटा या मादा की विशेष गलफड़ों से प्राप्त करते हैं। किन्तु, इस लेख में हम आपको अण्डे सेने के एक अलग ही तरीके से रुबरु कराएँगे।

मेंढक उभयचर श्रेणी के जीव हैं जिनमें सामान्तया बाह्य निषेचन होता है। इस प्रक्रिया में सामान्यतया मादा अपने अण्डे पानी में छोड़ देती है। पानी में रहकर ये अण्डे फूलकर आकार में बड़े और चिकने हो जाते हैं। अब नर इन अण्डों पर अपने शुक्राणु छोड़ देता है। इस प्रकार से शरीर के बाहर यह निषेचन सम्पन्न होता है।

इसके बाद शुरू होता है अण्डों को सहेजने और सेने का काम। मेंढक की अलग-अलग प्रजातियाँ अण्डे सेने के अलग-अलग तरीके अपनाती हैं। अधिकतर मादा मेंढक अपने अण्डे ठहरे हुए पानी में गुच्छों या ृंखला में देती हैं और अण्डे किसी लकड़ी से या जलमग्न वनस्पतियों से जुड़े रहते हैं। कुछ मादाएँ अपने अण्डे झाड़ियों की पत्तियों पर या पत्थरों के नीचे भी देती हैं और उन पर तब तक बैठकर उन्हें सेती हैं जब तक अण्डों में से बच्चे बाहर न निकल आएँ। अमरीका में पाई जाने वाली मेंढक की एक प्रजाति में तो नर मेंढक अण्डों को अपने साथ भूमि पर ले आता है और जैसे ही अण्डे फूटने के लिए तैयार हो जाते हैं, नर वापस तालाब में चला जाता है जहाँ अण्डों में से बच्चे निकलते

रियोबेट्रेकस विटेलीनस

हैं और वहीं उनका विकास भी होता है। मेंढकों की बहुत-सी प्रजातियों के टैडपोल स्थिर पानी में आराम से तैरते रहते हैं और तैरती हुई वनस्पतियों जैसे शैवाल को खाकर पोषण प्राप्त करते हैं। मेंढक सहित ज़्यादातर जलीय जीवों के अण्डों में, शारीरिक सन्तुलन बनाए रखने के लिए ज़रूरी भ्रूणीय झिल्ली (एलेनटोइस और एम्नीऑन) और कठोर बाह्य आवरण नहीं होते हैं। इसलिए जीवित रहने और विकसित होने के लिए यह ज़रूरी है कि अण्डे नम जगहों जैसे गीली मिट्टी या मादा के शरीर से जुड़े रहें।

इन तरीकों में से कुछ तरीके तो बहुत ही अद्भुत और हैरत में डालने वाले होते हैं। यहाँ आप मेंढक की एक ऐसी प्रजाति से रू-ब-रू होंगे जो अण्डे अपने पेट में सेने का बड़ा विचित्र तरीका अपनाती थी। 'थी' इसलिए क्योंकि यह तरीका अपनाने वाली मेंढकों की विलक्षण प्रजाति लगभग तीस वर्ष पहले ही विलुप्त हो चुकी है।

पेट में अण्डा सेने वाला अन्तिम दक्षिणी मेंढक, रियोबेट्रेकस सिलस (Rheobatrachus silus) सन् 1981 में देखा गया था और पेट में अण्डा सेने वाला अन्तिम उत्तरी मेंढक, रियोबेट्रेकस विटेलीनस (Rheobatrachusvitellinus) सन् 1985 में देखा गया। विचित्र बात तो यह है कि उत्तरी प्रजाति मार्च, 1985 तक सामान्य तौर पर पाई जाती थी, पर उसके तीन महीने बाद वो गायब हो गई और तब से अभी तक नहीं देखी गई है।

रियोबेट्रेकस जाति को वर्गीकरण के हिसाब से किस कुल (family) में रखना चाहिए, इस पर काफी गर्मा-गरम बहस चली थी। अन्ततः जीव विज्ञानियों ने इन्हें रियोबेट्रेचिनी (Rheo-

batrachinae) उपकुल के अन्तर्गत मायोबेट्रेचिडी (myobatrachidae) वर्ग के अन्दर रखा।

इनका सामान्य नाम गेस्ट्रिक-ब्रूडिंग फ्रॉग या प्लेटिपस (platypus) मेंढक है। जैसा कि इनके सामान्य नाम से समझ में आता है, इन मेंढकों में अण्डा सेने का काम माँ के पेट में होता है। इस तरह का तरीका अपनाने वाले ये इस दुनिया के अकेले जीव थे।

दक्षिणी गेस्ट्रिक-ब्रूडिंग फ्रॉग

दक्षिणी गेस्ट्रिक-ब्रूडिंग फ्रॉग, रियोबेट्रेकस सिलस सन्1914 में खोजा गया था। पर इसका अध्ययन 1972 में हो पाया। यह प्रजाति ऑस्ट्रेलिया के उत्तरी ब्रिसबेन के दक्षिण पूर्वी क्वीन्सलैंड तक ही सीमित थी। ये मेंढक वर्षा वनों, मैरी, स्टेनली और मूलूलह नदियों के स्त्रवण-क्षेत्र की जलधाराओं में पाए जाते थे। इसका अन्तिम संरक्षित नमूना भी सन् 1983 में मर गया था।

ये मध्यम आकार के फीके रंग के मेंढक थे जिनकी बाहर को निकली हुई बड़ी आँखें और छोटी थूथनी थी। इनकी अगली और पिछली, दोनों टाँगें शरीर की तुलना में बड़ी थीं। दक्षिणी गेस्ट्रिक-ब्रूडिंग फ्रॉग स्थलीय और जलीय कीड़ों को अपना भोजन बनाते थे।

उत्तरी गेस्ट्रिक-ब्रूडिंग फ्रॉग

उत्तरी गेस्ट्रिक-ब्रूडिंग फ्रॉग का अध्ययन सन् 1984 में हुआ था। ये ऑस्ट्रेलिया के मध्य पूर्वी क्वीन्सलैंड में पाए जाते थे। ये मेंढक दक्षिणी गेस्ट्रिक-ब्रूडिंग फ्रॉग की तुलना में ज़्यादा

अपने मुँह से नन्हे मेंढक को जन्म देती दक्षिणी गेस्ट्रिक-ब्रूडिंग फ्रॉग, रियोबेट्रेकस सिलस

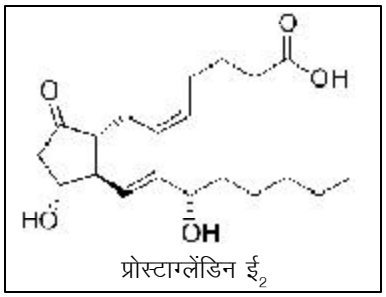

प्रोस्टाग्लेंडिन E_2

निषेचित अण्डे निगलने के बाद वयस्क मेंढक के आमाश्य में बनने वाले प्रोस्टाग्लेंडिन ई-2 की वजह से पेट में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का उत्पादन रुक जाता है। इसलिए अण्डे से टेडपोल और टेडपोल आसानी से नन्हें मेंढक के रूप में विकसित हो पाते हैं।

बड़े और गहरे रंग के होते थे। यह लक्ष्य किया गया था कि ये मेंढक छोटी क्रेफिश, केडिस फ्लाई के लार्वा और स्थलीय व जलीय भृंगों को खाना पसन्द करते थे।

गेस्ट्रिक-ब्रूडिंग फ्रॉग की दोनों प्रजातियाँ ऑस्ट्रेलिया की अन्य मेंढक प्रजातियों से आकार एवं व्यवहार में बहुत ज़्यादा अलग थीं। और दोनों ही प्रजातियों में मादा नर की तुलना में आकार में बड़ी थीं।

प्रजनन

हालाँकि, अचानक विलुप्त होने के कारण इन का पर्याप्त अध्ययन नहीं हो पाया था लेकिन वैज्ञानिकों का ऐसा मानना है कि इस असाधारण प्रक्रिया के दौरान, हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (पाचक स्त्राव) का उत्पादन बन्द हो जाता था जिसकी वजह से मादा मेंढक का पेट एक अस्थायी गर्भाशय में बदल जाता था।

ये स्पष्ट नहीं हुआ है कि अण्डे ज़मीन पर दिए जाते थे या पानी में। पर नर मेंढक के द्वारा बाह्य निषेचन करने के बाद, मादा निषेचित अण्डों को निगल लेती थी, जो पेट के अन्दर ही पहले टैडपोल में और फिर छोटे-छोटे मेंढकों (froglets) में विकसित हो जाते थे।

जिस वक्त मादा अपने निषेचित अण्डों को निगलती थी, तब उसका पेट किसी दूसरी प्रजाति के मेंढक के पेट से अलग नहीं होता था। पर जिस जेली से इनके सारे अण्डे घिरे रहते उसमें एक पदार्थ प्रोस्टाग्लेंडिन E_2 (prostaglandin E_2 या PGE_2) है। यह शरीर में प्राकृतिक रूप से पैदा होने वाला एक तरह का कम्पाउंड होता है जो पेट में हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का उत्पादन बन्द करने की क्षमता रखता है। विकसित हो रहे अण्डों की भ्रूण अवस्थाओं के दौरान, इस अम्ल के उत्पादन को रोकने के लिए PGE_2 का ये स्रोत काफी है। अण्डों से निकलने के बाद टैडपोल भी PGE_2 उत्पन्न करते

हैं। टैडपोल के गलफड़ों से उत्सर्जित होने वाले म्यूकस में भी PGE_2 होता है जो पेट को निष्क्रिय अवस्था में बनाए रखने के लिए ज़रूरी होता है। अगर पेट में अण्डे होने के दौरान हाइड्रोक्लोरिक अम्ल का उत्पादन बन्द नहीं होता तो मादा मेंढक द्वारा निगले गए अण्डे इस अम्ल की वजह से पच जाएँगे। मादा 6 से 7 हफ्तों की गर्भावधि के दौरान हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के उत्पादन के बन्द होने के कारण कुछ खा नहीं सकती। ध्यान देने की बात है कि मेंढक की अन्य प्रजातियों के टैडपोल्स में इस तरह का म्यूकस उत्सर्जन नहीं होता।

दोनों प्रजातियों में, अण्डे का व्यास 5.1 मिमि था और इस पूरी प्रसव प्रक्रिया में डेढ़ दिन लगते थे। अण्डों में योक की मात्रा बहुत अधिक होती थी जिसकी वजह से मादा के गर्भावधि के दौरान कुछ न खाने पर भी अण्डों का पर्याप्त विकास होता रहता था। और इसीलिए इनके अण्डों का आकार अन्य मेंढकों की प्रजाति के अण्डों के आकार से तुलनात्मक रूप से बड़ा होता था।

आखिरकार, मादा अपने मुँह के ज़रिए उन्हें जन्म देती है, और एक ही बार में एक या दो पूरी तरह से विकसित नन्हे मेंढक उछलते हुए इस बाहरी दुनिया में आ जाते हैं। अगले चार दिनों के बाद, पाचन तंत्र अपनी सामान्य स्थिति में आ जाता और मादा फिर से खाना-पीना शुरू कर देती थी।

टैडपोल को विकसित होने में कम-से-कम 6 हफ्ते लगते थे। इस दौरान मादा मेंढक के पेट का आकार तब तक बढ़ता जाता था जब तक उसके शरीर की खाली जगह पूरी तरह भर न जाए। इस वजह से फेंफड़े संकुचित हो जाते और श्वसन की क्रिया अधिकतर त्वचा के ज़रिए गैस के आदान-प्रदान से होती थी। परन्तु मादा मेंढक के बढ़ते हुए आकार के बावजूद वो पूरी तरह सक्रिय रहती थी।

विलुप्त होने का कारण

इन मेंढकों के विलुप्त होने का कारण तो अभी भी अस्पष्ट है, यद्यपि इमारती लकड़ियों की कटाई, प्रदूषण, रोगजनकों और परजीवियों को शायद थोड़ा दोष दिया जा सकता है। साइट्रिड कवक - एक जलीय कवक (chytrid fungus) को भी इस प्रजाति की गिरावट का एक कारण माना जा रहा है। गेस्ट्रिक-ब्रूडिंग फ्रॉग का विलुप्त होना एक बहुत भयानक क्षति है - न सिर्फ दो असाधारण प्रजातियों की बल्कि अण्डे सेने के एक अनूठे तरीके की भी।

पारुल सोनीः 'संदर्भ' पत्रिका से सम्बद्ध हैं।